प्राक्कथन

- ब्र विद्युल्लता शहा, सोलापूर.

मानव जन्मकी सफलता सम्यक् पुरुषार्थपर निर्भर है । पुरु + शेते से बना है पुरुष अर्थात् पुर = उत्तम चैतन्य गुणोंमे, शेत स्वामी होकर जो प्रवृत्ती करता है अथवा अधिष्ठाता रुपसे निवास करता है उसकी संज्ञा है अपना स्वाधीन भाव जितना उत्तम चैतन्यकी और बढे उतना सम्यक् पुरुषार्थ है। यह मात्र एक कटु सत्य है कि, परुषार्थकी गली
संकरी और मंजिल लंबी है । पूजा उस लबी मंजिल तक पहुचानेमे सहाय्यक है ।

श्राविकाश्रम भ. महावीर मंदिर एक सातिशय क्षेत्रा है सातिशयता इसलिये कि, हरवर्ष यहां के मंदिरजी मे अष्टान्हिका पर्व तीन बार धूमधामसे मनाया जाता है ।

माताजी पं. सुमतीबाईजी यह जिद्द करती है कि, हा परिस्थिती मे सुंदर रंगवेलीका मंडल बनाकर उसपर नंदीश्वर प्रतिमाजी विराजमान करना तथा उपर चांदोबा लगाना, रोषानाई झलकाना,बाजे बजाना आदि प्रभावनापूर्वक ५२ श्रीफल सहित उत्तमोत्तहम अष्ट द्रव्योंसे नंदीश्वर विधान संपन्न करना उनकी जिद्द हम पूरी कते है । और उसका फल आनंद पाते है। और संस्थानगर का सार वातावरण मांगलिक बनता है ।

समाजकी सारी श्राविकाएं इसमे सक्रिय सहयोग देकर अष्टान्हिका आठ उपवासोद्वारा प्रभावना करती है ।

सौ. श्रीकांत चद्रकांत दोशी ने ऐसींही प्रभावना करके व्रत संपन्न किया था । जो प्रसंग अविस्मरणीय रहा है।आश्रमकी छात्राबृंद तथा अध्यापिक सभी मंत्रमुग्ध होकर अनायसेही सुसंस्कारित होती है।

नित्य और नैमित्तिक रुपसे पूजा की जाती है । किसीभी मंगल कार्य के प्रारंभ मे अपने आराध्य देवताकी पूजा की जाना व्यवहार है । वैसे तो नवनिर्मित गृहप्रवेश के शुभ अवसरपर वास्तुशांती जैसी पारंपारिक पूजा करना कोई आश्चर्य नही है; फिरभी उस परंपरासे कुछ ऊपर उठकर श्री सिद्धचक्र विधान पूजा करना औचित्यसे नाहर नहीं है।

उपादान कारणं सदृशंहि कार्यमिति इस उक्तीके अनुसार श्री सिद्ध विधान पूजा करना स्वयंकी अंत:प्रेरणा होते हुए भी, श्री नाभिराज आ. नारकरने बताया कि, इस पूजाके प्रेरणा श्रोत है माताजी पद्मश्री पं सुमतिबाई शहा।

फूल छोटासा होता है किन्तु अपने विकासके समयपर अपनी जगह खडा होकर खिल उठता है और पास पडौस को -सुगंधि देता है; तो आश्चर्य मुझे भी नहीं हुआ, यह देखते हुए की सोलापूर जैसे महानगर की चारो ओरसे श्रावक श्राविकाएं भक्तिभावसे इस पूजामे लगातार आठ दिन तक उपस्थित

रहे। सर्वेणामविरोधेन पूजाकर्म समारभेत इस उक्तिका अच्छा परिचय हुआ। वैसे तो पूजा उद्घोषणाओंकी रट लगाना तथा बहस करनाही अधिक होती है उसपर पू. वीरसागर महाराजका अध्यात्मसार गर्भित प्रवचन अंकुश लगाता है । प. पू. १०८ श्री वीरसागर महाराज के प्रवचन ऐसे लगे जैसे शुद्धात्मा गुणोंका स्वाभविक रुपसे धारण हो ऐसा कह रहे हो तथा आचरण के चरण बढानेका निश्चय प्रदान करनेमे समर्थ हो ।

इस पूजा का निष्ठापक पद था मानवत निवासी श्री. लालचंद हरिश्चंद्र श्री. नारकरजीके मित्र है । कभी कभी आकस्मिक घटनाए मानवी स्वभावका सहज परिचय देती है । श्री लालचंदजीको निमंत्रण पत्रिका न मिलनेपरभी समयपर उपस्थित रहना औपचारिकतासे आगे बढता हुआ चरण दिखा । अनुराग विद्युत्की भांति होता है ; जो उन्हे मानवतासे सोलापूरतक खीच लाया ।

लगातार आठ दिन श्रावक श्राविकाओंका झुंडसा बना रहा; ये ठीकही है, आनंद बाटना चहिए क्यो कि आनंद जुडवा पैदा हुआ था । पूजाके शब्दार्थ अनेक हो सकते है । पवित्र होना यह भी एक अर्थ है, किसे होना है पवित्र ? पूजकको,जो प्रमादवश पवित्रताको मलीन करता है । पूजा इस मलिनताको धोनेकी अध्यात्मिक प्रक्रिया हो सकती है।

पूजामे प्रयक्त शब्दोंने श्री सिद्ध भगवानके अनंत गुणोंको खोलकर सामने रखा । पं. संतलालजीने इस पूजा को रचकर अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया । वैसे देखा जाता है कि, प्रतिभा कार्योको प्रारंभ करती है। फिरभी परिश्रमके बिना वह कार्य पूर्ण नही होता । अठारहशतीके इस विद्वान पंडितने दशलक्षणिक पूजा तथा इस श्री सिद्धचक्र विधान पूजा की रचना करके अपनी प्रतिभाके साथ महती परिश्रमका भी परिचय करवाया । महाकवि कालिदासने कहा है, न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् (चंचल चकनेवाली बिजली पृथ्वीतलस निकला नही करती ।) अर्थात उत्तम वस्तुकी उत्पत्ति ऊचे स्थानसेही होती है ।

पूजा का ध्येय क्या है, उसके प्रकार कितने है , विधी क्या है आदि प्रश्नोंकी उत्तर खोजना एक विशाल ग्रंथका निर्माण करना है। जो हमारे अनेक आचार्योने किया भी है । उन ग्रथोंको सार रुपभी रखना विशाल कार्य है । मै तो उन ग्रंथोको आधारसे इतनाही कहुंगी कि पूजा का ध्येय तो निर्विकल्प समाधी है जो आनंदका भंडार है जीवनमे और होनाही क्या? जीवनके उद्देशके संबंध मे कितनाभी प्रश्न पुछो और कितनेभी उत्तर ढूंडो सही उत्तर तो निर्विकल्प समाधीही होगा। शब्द कोई भी हो ब्रम्हानंद, चिदानंद,आत्मदर्शन, चैतन्यानंद आदि ।

यह जो सिद्ध पूजा है, उसमे आठ दिन पूजा चलती है और २०४० अर्ध्य है । भगवान के शुद्ध गुणोंका स्मरण है। मूलत: दो प्रकारसे किया है । एक सिद्ध भगवान विकार-कषायोंसे रहित है ; दुसरा सिद्ध भगवान गुणसहित है । जैसे कर्मरहिताय नम: अनंतगुण स्वरुपाय नम: कुछ लोग शंकित होते है कि, जो गुण है उनका चिंतन ठिक है किन्तु जो गुण है हि नहीं उनका क्या चिंतन करना ? उनका यह

शंकित होना यह भूला देता है कि, कर्मादिकलंकसे रहित होना है। किससे रहित होना है यह तो समझ ानाही किससे रहित होना यह बतलाता है ।

इसके अतिरिक्त इस पूजामे जिनसहस्त्रनामोमेसे ५७५ नामोंका स्मरण कीया है । वैसे तो लक्षणोंसे तो पूर्ण सहस्त्रनाम आही जाते है किंन्तु शब्दोंमे भेद है । जैन साहित्यमे पांच सहस्त्रनाम है । जिनमेसे श्री जिनसेन आचार्य और पं. आशाधरकृत अधिक प्रसिद्ध है ।

पं. संतलालजी की काव्य प्रतिभा, विद्वता, रचना कौशल्य आदिकी चर्चा यहां मै करना नही चाहती, जो निर्विवाद है सब लोग काव्य चाहते है। ऐसा नही है और जो कहना है यह शत प्रतिशत काव्य केद्वारा समझाया जायेगा ही ऐसा भी नही है । क्यों कि काव्य की कुछ मर्यादाएं होती है जैसे छदमात्रा, श्लोक ,चरण आदि।

इस अपूर्तीको इस पुस्तिकाने निकाला है । गद्यरुप जो है अधिक विस्तारसे लिखा है । णमो सिद्धाणं यह नाम सार्थ है, क्योंकि सिद्ध भगवानकीहि पूजा है । विस्तारको देखतेहुए मुझे यह कहना होगा कि, लेखकने कम शब्दोंमे अधिक भाव स्पष्ट करनेका सफल प्रयत्न किया है। स्पष्टीकरणमे विविधता है . उदाहरण है, दृष्टांत है, प्रश्नोत्तर है । कहना होगा कि, इस श्रमसाध्य कार्यका दायित्व उन्होने बडे मनोयोग निष्ठा और तत्परतासे किया है । जिसे पढकर इसको उपादेयता सिद्ध हो जाती है ।

श्री. लालचंदजी लेखक है और प्रस्तुत विश्लेषण यह भी सिद्ध करता है कि आप अध्यात्म केमर्मज्ञ ा भी है वर्तमानमे सोलापूर महानगरमे प पू १०८ श्री वीरसागर मुनी महाराज है, लालचंदजी उनके सहाध्यायी (जैन धर्मशास्त्रके) है। इस पुस्तिका लेखनमे महामहिमोध्याय पं. नरेंद्रकुमारजी शास्त्रोका अच्छा मार्गदर्शन रहा ।

यह पुस्तिकाको पढनेपर वाचक कहे गा कि,परिश्रमका प्रासाद सुंदर बनानेवाला यह विश्लेषण है इसकी सफलता तब है जब वास्तवमे हमारा ह्दय तत्त्व पूज्य मे ठहर जाये ; क्योंकि हम पूजक हैं ।

यह एक सफल कृति है इसका स्वागत ह्दयसे होना चाहिये ।

णमो सिद्धाणं - १

सिद्धा: निष्ठिता: कृतकृत्या: सिद्धसाध्या: नष्टाष्टकर्माण: ।

जो निष्ठित अर्थात् पूर्णत: अपने स्वरुपर्मे स्थित है , कृत्यकृत्य है, जिन्होंने अपने साध्यको सिद्ध कर लिया है, और जिनकेज्ञानावरणादि आठ कर्म नष्ट हो चुकेहै , उन्हें सिद्ध कहते है ।

निष्ठित का अर्थ तो ऊपर कह चुके है । अब कृत्यकृत्यका स्वरुप बताते है । मै नहीं आचार्य बताते है ।

जो करने योग्य कार्योको कर चुकेहै वे कृत्यकृत्य है ।

आगे इसके संबंधमें ही एक मनोरम वर्णन सुनिये । जैन शास्त्रोंमे ऐसा मनोहरा वर्णन तो प्रचुरतासे है तथा सुचारु रुपसे यत्र-तत्र है । देखिए, पढिए , चिंतिये. आनंद लीजिए ।

हाथोंसे कोईभी करने योग्य कार्य शेष न रहनेसे जिन्होंने अपने हाथोंको नीचे लटका रखा है, गमनसे प्राप्त करने योग्य कुछभी कार्य न रहनेंसे जो गमनरहित हो चुकेहै, नेत्रोंकेदेखने योग्य कोई भी वस्तू न रहनेसे जो अपनी दृष्टिको नासाग्रपर रखा करते है, तथा कानोंसे सुनने योग्य कुछ भी शेष न रहनेसे जो आकुलता रहित होकर कानभी एकान्तमय हो गये है । एकान्त स्थानको प्राप्त हुए है, ऐसे वे ध्यानमे एकचित्त हुए भगवान् जयवंत होवें ।

सिद्ध प्रतिमाको देखिए और चिंतन कीजिए । पुरुषार्थ सिद्धयुपायमे आचार्य बताते है ।

सर्व विवर्तोत्तीर्ण यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति ।
भवति तदा कृतकृत्य: सम्यक्पुरुषार्थ सिद्धिमापन्न:।।

(जब यथास्थित पुरुषार्थके सिद्धिको प्राप्त अशुद्ध आत्मा संपूर्ण विभावोंसे परे-दूर जाकर निष्कषाय चैतन्य स्वरुपको प्राप्त करता है । तब यह आत्मा कृतकृत्य होता है ।)

वैसे तो सिद्धजीव से कहै, इसका स्वरुप तो विस्तीर्ण रुपसे आगममे है , फिरभी कुछ बताना चाहूँगा. चिंतनकेलिए

१ जो तीन लोककेमस्तककेशिखर स्वरुप है , वे सिद्ध है ।

२ जिन्होंने सर्वागसे संपूर्ण पदार्थोको जान लीया है , वे सिद्ध है ।

३ जो वज्रशिला निर्मित अभगन प्रतिमा केसमान अभेद्य आकारसे युक्त है, वे सिद्ध है ।

४ जो सब अवयवोंसे पुरुषाकार होनेपर भी गुणोंसे समान नहीं है क्योंकि पुरुष संपूर्ण इनिद्रयोके विषयोंकी भिन्न

देशमें जानता है, परंतु जो प्रति प्रदेशमे सब विषयोंको जानते है , वे सिद्ध है।

सिद्ध जीवोंका वर्णन मै क्या करुं ? मै तो अल्पमति बडेबडे आचार्य स्वयंको अल्पमति संबोधित करते है , मै तो सचमुच अल्पमति हूँ । मैने संसार (कषायरुप) रचा है , उसमें ही धूम मचा कर स्वयंको बचा रहा हूँ फिरभी अनहोनीसे बनकरिके(इति क्षु. धर्मदास) कहता हूँ। ये (श्री सिद्धगणान्) कि करिष्यन्ति । रागादि विकल्परहित समाधि भजन्त: सेवमाना: । क्या है समाधि?

समेकी भावे वर्तते तथा च प्रयोग:संगतं तैलं संगतं घृतम्
इत्यर्थ: एकीभूतं तैलं एकीभूतं घृतमित्यर्थ: । समाधानं मनस:
एकाग्रताकरण शुभोपयोगे शुद्धे वा ।

(मनको एकाग्र करना, सम शब्दका अर्थ एकरुप करना ऐसा है । जैसे घृत संगत हुआ, तैल संगत हुआ इत्यादि
मनको शुभोपयोग मे अथवा शुद्धोपयोगमे एकाग्र करना यह समाधि शब्दका अर्थ हुआ ।

सिद्धजीव तो शुद्धोपयोगमे एकाग्र रहते है । ध्येय और ध्याताका एकीकरणरुप समरसीभाव ही समाधि है । तथा स्वरुपमें चित्तका विरोध करना समाधि है ।

रागादि विकल्परहित समाधि और निर्विकल्प समाधि एक ही है । (अध्यात्मभाषया) शुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसाध्यागमभाषय रागादिविकल्परहितशुक्लध्यानसाध्येवा । अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूति लक्षण है जिसका ऐसी निर्विकल्प समाधि साध्य है । और आगमभाषासे रागादिविकल्परहित शुक्लध्यान साध्य है ।

यह इसलिए कह रहा हू कि रागादि जो है उनसे रहित होना यही निर्विकल्प अवस्था है । एसी निर्विकल्प अवस्थामें सिद्धजीव अनंतकाल रहते है ।

परमसमाधि और निर्विकल्प समाधिभी एकही है ।

परम आराध्य जो आत्मस्वरुप उसके ध्यानमें लीन जो तपोधन वे शुभअशुभ मनवचन कायके व्यापारसे रहित जो शुद्धात्मद्रव्य उससे विपरीत जो अच्छे बुरे भाव उन सबको छोड देते है , समस्त परद्रव्यकी आशासे रहित जो निजशुद्धात्म स्वभाव उससे विपरीत जो इसलोक परलोककी आशा वह जबतक मनमें स्थित है तबतक यह जीव दु:ख्री है , ऐसा जानकर सब परद्रव्यकी आशासे रहित जो शुद्धात्म द्रव्य उसकी भावना करनी चाहिए।

कैसे है सिद्ध भगवान ?

अपेक्षारहित जैसे है वैसे है।

प्रमाण व नयके विषय परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा करते है अथवा एक नयका विषय दूसरी नयके विषयकी अपेक्षा करता है , इसीको सापेक्ष तत्त्व कहते है । निरपेक्ष तत्त्व इससे विपरीत है ।

सिद्ध जीवोंका जो ज्ञान होता है , वह निरालंब स्पष्ट होता है इसलिए किसी नयका आश्रय लेनेका कारण ही नहीं है ।

प्रश्न :- निरपेक्ष रहकर भी तंतु अदिकमें तो शक्तिकी अपेक्षा पटादि कार्य विद्यमान है (पर निरपेक्ष नयमे ऐसा नहीं है, अत: दृष्टांत विषम है ।)

उत्तर :- यही बात ज्ञान व शब्दरुप नयोंके विषयमें भी जानना चाहिए । उनमें भी ऐसी शक्ति पायी जाती है , जिससे वे कारणवश सम्यग्दर्शनके हेतुरुपसे परिणमन करने समर्थमें है । इसलिए दृष्टांतका दार्ष्टान्तके साथ साम्य ही है । (पहले जो प्रश्न उठाया, उसका कारण यह है कि, ऐसा सिद्ध किया जाता है कि, परस्पर सापेक्ष रहकर ही तन्तु आदिक पटरुप कार्यका उत्पादन करते है ।)

हे भव्यात्मन्, सिद्ध भगवानको तो प्रत्यक्षानुभूति होती है, इसलिए उन्हें निश्चय व्यवहारादिके विकल्प नहीं रहते। तत्त्वान्वेषण कालमें ही व्यवहार नश्चयादि नयका आश्रय लिया जा सकता है, किन्तु जब आत्माकी आराधना चलती है तो विकल्प नहीं होते, क्योंकि सिद्ध भगवानको तो आत्मा प्रत्यक्ष ही है । प्रत्यक्षानुभूति तो नय पक्षोंसे अतोत है ।

य एव समस्तं विकल्पमतिक्रामति स एव समयसारं विन्दति ऐसा स्पष्ट रुपसे कहा गया है । सिद्ध भगवान तो स्वयं कार्य परमात्मा बने हुए है, अत: वह समयसार स्वयं है । अत:सिद्ध है, विकल्प नहीं रहते ।

बात ऐसी है कि, व्यवहार या निश्चय इन दोनोंमेंसे किसी एक नयका अथवा उभय नयका बिकल्प करनेवाला यद्यपि उस समय अन्य नयका पक्ष नहीं करता पर विकल्प तो करताही है । समस्त नय पक्षको छोडनेवालाही विकल्पोंको छोडता है और वही समयसारका अनुभव करता है ।

इतना लिखनेका प्रयोजन तो यही है कि, हम जान जाए कि ज्ञान निरपेक्ष होता है और अनुभव निर्विकल्प होता है।

अहो सिद्ध भगवानकी महिमा अगम्य है ! उनका चिंतन करनेसे अनुपम आनंद होता है ।

आग ज्ञान निरपेक्ष होता है और अनुभव निर्विकल्प होता है , इसका कुछ स्पष्टीकरण देंगे । ..... उसकें बाद सिद्धाष्टक ....

शंका :- कैसे है सिद्धजीव ?

समाधान :- कह तो दिया निरपेक्ष जैसे है वैसे है । और सुनो निर्विकल्प जहां है वहां है :

शंका :- विकल्प क्या है ?

समाधान :- मै सुखी हूँ अथवा मै दुखी हूँ इस प्रकार जो अंतरंगमे विवादरुप परिणाम होता है, वह विकल्प है । और सुनो

वास्तवमें जो संकल्प है वही विकल्प है। विकल्पसंकल्पकी पर्याय है ।

शंका :- सिद्ध जीवोंको ज्ञान तो होता है न ? फिर वे निर्विकल्प है, कैसे संभव है ?

समाधान :- सिद्ध जीवोंका जो ज्ञान होता है, वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है ।

शंका :- और कही, जाने बिना तो ज्ञान होता ही नहीं ।

समाधान :- ऐसा नहीं है। वास्तवमें स्वयंज्ञान चेतनारुप जो शुद्ध स्वकीय आत्माका उपयोग होता है, वह संक्रांत्यात्मक न

होनेसे निर्विकल्प है ।

शंका :- विकल्प क्या है, अधिक विस्तारसे कहो ना ?

समाधान :- कह तो दिया विषादरुप परिणाम है वय विकल्प है, और सुनो राग-द्वेष-मोह यह विकल्प है ।

शंका :- राग, द्वेष, मोह एक है या अलग है ?

समाधान :- जैसे वस्त्रमें खडे और आडे तंतु होते है, वैसे ही राग और द्वेष है ।

शंका :- राग-द्वेष तो जानता हूँ, पर मोह कैसे आता है ?

समाधान :- पुरुष होना सो मोह है, शास्त्रोंमें माता है, सामान्येन दर्शन चारित्र मोहनीयोपजनिता विवेकरुपो मोह: और

शुद्धात्म श्रद्धानरुप सम्यक्त्वस्य विनाशको दर्शन मोहाभिधानोमोह: ।

शंका :- मोह का नाश करनेकेलिए अरहंतकें जानो ऐसा क्यों कहा । है ?

समाधान :- अरहंतको जाननेसे आत्माका ज्ञान होता है और मोहका नाश होता है ।

शंका :- जाने अरहंतको और ज्ञान हो आत्माका, ऐसा क्यों ?

समाधान :- क्योंकि दोनोंमें निश्चयसे अंतर नहीं है ।

शंका :- जिसको स्वकल्याण करना है उसकी स्वपर विवेक करना क्या?

समाधान :- जिसको अंतर आत्माका प्रेम है, उसनें भेद विज्ञानसे आधार पर आत्माको पृथक् करके चिदानंदमय आत्मामें ` लगाए, ऐसे आत्माके विकार भरी मोहका प्रादुर्भाव नहीं होता ।

शंका :- मोहको नाश करना कोई काम नहीं है ?

समाधान :- हां, जो परमात्माको जानता है, वह पर द्रव्यमे मोह नहीं करता ।

चलिए ! सम्यकत्वकी प्रभातमें आत्ममंदिरमें जाकर मंगलमय आत्माराम भगवानकी पूजा करें । ज्ञ ाान शरीरको सम्यक् ज्ञानसे निर्मल करे । सर्वस्व ज्ञान क्यों है ? अर्थात् ज्ञान भी शरीर और उसको निर्मल करनेके लिए सम्यक्ज्ञान

? शरीर भी ज्ञान, जल भी ज्ञान, ज्ञान आत्माका असाधारण गुण है । ज्ञान लक्षण है और वह आत्माको प्रसिद्ध करता है । ज्ञान है सो कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं है, जो ज्ञान अंतर्मुख् होकर आत्माको जानता है वह ज्ञान आत्माका लक्षण है। इस ज्ञानरुपी जलको स्याद्वाद से निर्मल किया जाता है । तो चलिए आत्मारामकी पूजा करने पूजा क्या है ? पहिले ऐसा निश्चय किया जाय कि पूजा क्या है ? यहां पोषाण पूजा या रत्नपूजा आदिका प्रश्न है ही नही। है केवल आत्मदेवकी पूजा का आत्मदेव देवालयमे नहीं है, पाषाणकी मूर्ती लेप या चित्रामकी मूर्तीमें नहीं, वह देव अविनाशी है, कर्म अंजनसे रहित है । केवलज्ञान कर पूर्ण है, ऐसा निज परमात्मा स्वभावमें निष्ठ रहा है । आराध्य परमात्मा है, आराधक में (आत्मा) हूँ । जो परमात्मा है वह ही मैं हूँ तथा जो स्वानुभवगम्य मैं हुँ वही परमात्मा है, इसलिए मैं ही मेरे द्वारा उपासना किया जाने योग्य हूँ । ऐसी निश्चय धारणा करों इस अवस्थाको समरस होना भ्ी कह सकते है । विकल्परुप मन भगवान आत्मारामसे मिल गया और परमश्वर भी मनसे मिल गया । तो दोनोंहिको समरस होनेपर किसकी पूजा करे। अर्थात् निश्चयनयकर अब किसीको पूजना सामग्री चढाना नहीं है । यह तो भाव पूजा है । आराध्य है सो परमेष्ठी है । और परमेष्ठी आत्मामेंही स्थित है, अत: वह ही मुझे शरण है । ... ... क्यों करना है पूजा ? पापके नाश हेतु ? क्या सचमुच पाप विनाश होता है पूजा से ? भव्यात्मन्, धवलमें तो ऐसा आता है कि, जिनदेव वंदन, आदि जीवोंके पापके विनाशक नहीं है,क्यों कि ऐसा होनेपर वीतरागताके अभावका प्रसंग आवेगा । तब पारिशेष रुपसे जिन परिणत भाव और जिनगुण परिणामको पापका विनाशक स्वीकार करना चहिए । भावपूजाको अधीक स्पष्ट करने समझनेके लिए, ध्यान रखे -

१ मनमें अर्हन्तादिके गुणोंका चिंतन करना भाव पूजा है ।

२ अनंत चतुष्टय गुणोंके चिंतन-किर्तन करके जो वंदना की जाती है वह भावपूजा है । ओम जिनेंद्र गुण गानको

भाव पूजा जानो ।

३ चार प्रकार का ध्यान भावपूजा है ।

चलिए । अधिक कहनेसे क्या लाभ ? केवल कहते रहनेसे क्या लाभ ?

देखिए, सिद्ध समूहको पूजनेवाला पात्र तो भव्य जीव है सहज दूसरा पात्र तो मन है, जो पूजा के लिए परमावश्यक है ।

सहज सिद्ध परमात्माकी मै पूजा करता हूँ ।

१) प्रथम तो अपने मनरुपी मणिके पात्र में भरेहए समता रसरुपी अनुपम रसकी धारासे केवल ज्ञानरुपी कलासे मनोहर सिद्ध परमात्माकी मै पूजा करता हूँ । जलं

२) सुगंधित चंदनसे अनुपम गुण समूहके नाशक सहज सिद्ध-पूज्य बडेसेबडे समस्त दोषोंका शोधन करनेमें समर्थ स्वभावरुपी सहज रुसे कर्म कलंकको नष्ट करनेवालें ऐसे निर्मल भावरुपी । गंधं

३) स्वच्छ चावलोंसे अप्रतिहत ज्ञानके धारी सहज सिद्ध परमात्मा की में पूजा करता हूँ अक्षतं

४) सहज क्रियारुप करके द्वारा शोध गई आत्म स्वभावरुपी सुंदर फूलोंकी सुशोभित मालासे उत्कृष्ट योगके बलसे वशमें किये गये सहज सिद्ध परमात्माकी मै पूजा करता हूँ । पुष्पं

५) जन्म, जरा और मरणकों नष्ट करनेवाले सहज ज्ञानरुपी सुंदर नैवेद्यसे अमर्याद और प्रचुर आत्मगुणोंके निकेत्तन सहजसिद्ध परमात्मा की में पूजा करता हूँ । चरुं.

६) भोगकांक्षारुपी अंधकारको नष्ट करनेवाले सहज सम्यकत्वरुपी दीपकसे निरवधि आत्म विकासद्वारा विकासको प्राप्त हुए सहजसिद्ध परमात्माकी मै पूजा करता हूँ । दीपं.

७) आत्म गुणोंके घातक कर्म मलोंको नष्ट करनेवाली अपने अक्षय गुणरुपी धूपसे विशद बोध और अनंत सुखस्वरुप सहजसिद्ध परमात्माकी मै पूजा करता हूँ । धूपं.

८) सहजरुपसे कुभाव भावोंका शोधन करनेवाली उत्कृष्ट भावरुपी फल संपत्तिसे अपने गुणोंका स्फुरण होनेसे निरंजन पदको प्राप्त हुए सहजसिद्ध परमात्माकी में पूजा करता हूँ । फलं.

समतारस, निर्मलभाव, स्वभाव, आत्मस्वभाव, सहजज्ञान, सम्यकत्व अक्षय गुण और उत्कृष्ट भाव इन आठों भावोंमें कुछ समानता है ; ऐसी समानता है जो परस्परोंमें अभिन्नता स्थापित करती है वह

क्या हो सकती ? जल चंदनादि द्रव्योंमें क्या कुछ रुपक हो सकता है ? क्या अष्टद्रव्य किसी विशिष्ट भावोंका प्रतिनिधीत्व करते है ? किन भावोंका इसका हमें आगे विशद करना है । -

पहले हम लिखे उन भावोंकी गिनती की है । सूक्ष्मतासे

जल :- समतारस .

चदन:- निर्मलभाव .

अक्षत :- स्वभाव .

पुष्प:- आत्मस्वभाव .

चरु:- सहजज्ञान .

धुप:- अक्षय गुण .

इने देखनेपर हमे यह ज्ञान होता है की इन भावोंको रत्नत्रयमें बांटा गया है ।

पूजा-अर्चाका अंतिम ध्येय तो रत्नत्रय है ही, इसमें शंका लेना व्यर्थ है ।

अब इनको जल चंदनादि उपमा ओंमें दिखाया है तो हम भी कुछ तर्क सामने रखते है । जलके संबंधमें

फल :- उत्कृष्टभाव . तर्क-

जलके अनेक गुणोंमें मल नष्ट करना यह एक प्रमुख गुण है । आत्मामें पर सत्ताको स्वीकार करनेरुप जो मल लगा है वह तो अपने निर्मल आत्मामे समर्पित हुए बिना दूर नहीं हो सकता ।

व्यवहार दृष्टीसे भी जब तक सुख-दुख जो अपने और परके हों, उनका समान रुपसे चिंतन किये बिना या मध्यस्थ रहकर विचार किये बिना अंतरंगमें निर्मलता नहीं आ सकती

इसी प्रकार चंदनादिका तर्कर सकते है ।

ऊपर जो भाव है , स्वभाव है । परभावसे तो छुटाकर लेना है । आत्माके स्वयंसिद्ध, तर्कागोचर, नित्यशुद्ध अंश आत्माका स्वभाव है । अपने असाधारण धर्मके द्वारा होनासो स्वभाव कहा जाता है , वस्तुक स्वभावको धर्म कहते है । स्वसंवेद्य निरुपाधिक ही वस्तुका स्वरुप है , वही वस्तुका स्वभाव है । ऐसी कुछ व्याख्यामें ध्यान ले ।

प्रवचनसारमें एक बहुत अच्छी बात कही गयी है -

द्रव्यस्य क:स्वभाव इति पृष्ठे गुणपर्यायाणामात्ना एक स्वभाव इति- इस व्याख्यासे तो स्पष्ट है कि. आत्मामें गुण पर्याय होते है । औरभी कहा है कि, स्वभाऽस्तित्वसामान्यान्वय:। यहां उन्वय होता है यह महत्वकी बात कही गई है

यहा कोई प्रश्न कर सकता है कि, स्वपर स्वभावकी चर्चा कर रहे है , और उपमाओंका आत्मामें घटा कर तर्कभी कर रहे है, यह कैसा ? दोनोंमें परस्पर विरोध दिख रहा है ?

समाधान ऐसा हैं कि, स्वभावमें तर्क नहीं चलता । स्वपर जो तर्क कर रहे है, यह भी स्वभावकी

समझनेकेलिए है । हम स्वभावमे तर्कनी कर रहे है, कल्पनाओंमें तर्क कर रह है ।

पूजाकेबारेमें धवलग्रंथमें आता हूँ ।

चरु-बलि- पुष्प -फल-गंध धूप दिवादीहिं

सगभत्तिपगासो अच्चना । (ध. मु ८ पृ. ९२)

इस श्लोकको ध्यानसे देखो तो जलाहिदिक का क्रम व्यस्त लगेगा । क्योंकि प्रचलित क्रम इस क्रमसे अलग है । औरभी एक विशेष बात है कि इनमें सात (चरु बलि, पुष्प, फल, गंध, धूप, और दीप) द्रव्यभी गिनाये है । आदि शब्दसे संख्या बढ सकती है ।

भक्तिको प्रकाशित करना है -

ऐंसाभी तक किया जाता है किश जब धवलादि लिखे उसे उस समय पूजाके द्रव्योंमे जल गिनाया नहीं जाता था । जल तो न्हवन अभिषेक क लिए लिया जाता है और न्हवन पहले होता है । पूजासे पहले हो चुका होता है । कुछ भी क्यों न हो, आज को रीति सर्वसान्य है । ध्यान रहे

हम अहिंसाके पुजारी है, ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं होना चाहिए जिससे जीवोंकी हिंसा हो । द्रव्योंका उपयोग विवेक तथा संयमे करना चाहिए । सबसे पहले श्रद्धामें ऐसा निश्चय कीजिए कि, पूजा निर्जराके हेतु होती है । मोक्षके लिए होती है । आश्रव बंधके लिए नहीं । आश्रव बंधके लिए तो असंख्याते कर्म है, पूजाको उसके लिए उपयोगमें लाना ठीक नहीं । प्रभावना प्रिय लोंगोको यह बात अच्छी नहीं लगेगी किंतु हमें वीवरागी होना है । रहना है ।

भगवती आराधनामे मोक्षप्राप्ति होनेतक ऐसा कहा है । भाव पाहुडमें भावरुप शस्त्रसे संसार बेल की जड मिथ्यात्व नष्ट करनेको प्रेरित किया है ।

कषाय पाहुडमें असंख्यात गुणी निर्जराका कारण बताया है ।

१) पुण्य होता है निर्जरा करनी पडती है ।

२) पुण्य करना पडता है, निर्जरा होती है ।

३) पुण्य होता नहीं तो निर्जरा भी होती नहीं ।

४) पुण्य होन हो निर्जरा करेंगे ।

५) निर्जरा हो न हो पुण्य तो कर लें ।

इस प्रकारकी मनुष्यकी भाव प्रणालीयां है । जिनकी थोडी चर्चा करनेके बाद निर्जराकी ओर प्रेरित करेंगे और फिर जयमाला शुरु हो जायगी । णमो सिद्धाणं - ११ से (संभवत-)
२०४० गुण स्मरणका शुभारंभ होगा ।

पूजा शब्दमें पू का अर्थ है पवित्र होना । पूज्य होता है पवित्र पूजक को होना है पवित्र । पूज्य पूजकमें अभेद लाना है पूजकको । पू का दूसरा अर्थ है मांजना उजली दीप्तिमान वस्तुको कौन साफ करे ? साफ तो मनको करना है । उसमे सुलभता आनेके लिए शरीरको हम मांजते है । मलको निकालने और शरीरको साफ करनेरुप क्रियांए दो नहीं है, किन्तु ध्यान रहे मल की और ध्यान न दे । कितना है, कैसा है क्यों है ? इनसे हमें क्या, हमें तो शरीरको साफ रखना है । कर्म कितने है, कैसे है क्यों है इन प्रश्नोको समझ लेना ठीक है, किन्तु उसमेंही उलझते रहना कहांतक ठिक होगा ? साधकको तो ध्येयपर ही आँख रखनी है । ध्येय तो वीतरागकेसिवा और होना तो नहीं चाहिए ।

पू- का अर्थ फटकना ऐसी भी है । सूपडेमें ध्यान, जल आदि लेना और उसे इस तरह चलाना कि भूसा या छिलका बाहर जाए और सारबात जो है बचा रहे, सूपमें । सूप क्या है ? आत्मा है । कर्मोका कूडा कचरा तो ही, किन्तु ध्यान चिंतन ऐसा रहे कि यह कूडाकचरा फेक दिया जाय । पूजा उसको फेकनेका साधन है । भंगुर और ध्रुवका मेला होता हि है । किसीने चिंतनके झरोखेसे शब्दोंकी रचना इस प्रकार को है ।

मल - शुद्ध आत्माकेसिवा, चैतन्यकेसिवा जितने भी परजनित भाव है, मल है। उनसे दूर होना है, रहना

है ।

माल - संग्रह करनेसे माल पासमें होता है । स्वयं शाश्वत अनंत निधीका स्वामी होनेपर वास्तविक

कुछ दूसरा संग्रह करनाठीक नहीं है ।

माल मालाको भी कहते है । मालाकेफूल गुंथनेकेबाद क्रम बदल नही सकते । सब कुछ क्रमबद्ध

होनेपर ही माल बनी रहती है । आत्माके अनंत गुणोंमे व्यवस्थित तालमेल है । तालमेल न हो ऐसा

चैतन्यही नहीं हो सकता ।

मील - हम कितना चले है, कितना चलना है, अंतर कितना है, इन सब बातोंको समझानेकेलिए मील

संज्ञा है । अंतरंग कितना ऊंचा है तथा ध्येयकी ओर कितना बढे है, अभी कितना बढना है, यह

समझानेवाली पूजा होती है ।

मूल - कर्मोका मूल क्या है? आत्मशुद्धीका मूल क्या है ? यह तो जाननाही चाहिए । लेकिन केवल

जाननेसे उसमें ज्ञान नहीं आ सकती । मूल जाननेकेबाद निश्चयसे निश्चित क्या करना है,

यह समझना मूल है ।

मेल - मेलका संबंध तालमेलसे है । तालमेल विवेकसे होता है । पूजा एक अनुकरण माल है । कितना

अनुकरण करना है ? क्या कभी छोडना नहीं ? अनुकरण, बोध, पुरुषार्थ इसमें कुछ तो मेल

अवश्य होना चाहिए फिर चिदानंद दूर नहीं

मोल - सिद्धत्वका मोल क्या करे ? मोल करनेकेलिए वजन कीमत Quantity कुछ तो चाहिए ।

सिद्धत्वको तो कोई तोलही नही सकता । निरुपम जो है । कीमत भी कैसे करें ।

सिद्धत्वका मोल सिद्धत्वही है ।

तरंग -

मी शुद्ध सिद्ध मजला माझाच संग झाला ।।

माझ्यात रंगण्याचा, पहिला प्रसंग आला ।।

माझाच मी असे हा माझा अभंग झाला ।।

टाळास ताल द्याया माझा मृदंग आला ।।

माझ्यात रंगणारा, माझाच रंग झाला ।।

मजला अपार प्यारा माझा तरंग आला ।।

पूजाका अर्थ तो देखलिया, लेकिन केवल अर्थ देखनेसे क्या ? देखो आजकल Electricity का उपयोग बडी मात्रामें है । तो पूजक प्रदर्शनके लिए बडेबडे बल्ब लगाए जाते है प्रकाशकी और आकर्षित होकर कीडे मरते है, पैरोंतले कुचल कर तो इसी प्रकार पुण्यकेप्रकाश की ओर आकृष्ट होकर मनकेभाव कीडे कुचल दिये जाते है, लोभकेपैरोंतले । और दिखिए , आजकल रेडिओ, टेप व्होडीओ, स्टीरिओ आदि साधनोंको भरमार है । पूजामें बादकी जरुरत होती है । इसलिए इन साधनोंका उपयोग किया जाता है वही नाद शोरमें बदल जाता है विवेक न हो तो । उसी प्रकार पूजाके लिए प्रशस्त भावकी जरुरत होती है वही प्रशस्तभाव आसक्ति, विकारमें बदल जाता है । जब हम किसीके लिए याचना करते है। पूजा आराधनाकेसमय इनका उपयोग कर तो हुए भी अपना विवेक जागृत करो, रखो । पूजा करते हुए हम भगवानके नजदीक पहँचते है, तो ज्यों ज्यो एकात्मता पुष्ट होती जाती है, जीव पूर्ण सिद्धांत और नि:श्रंयस की और बढता, हुआ अंतत: सोऽहम् केकिन्तु तक पहूँच जाता है । क्योंकि पूजामें हमारा हृदय-तत्त्व धुल जाता है। आपए कुछ प्रश्नोत्तर करें ।

प्रश्न:- क्या पूजाकेपीछे कोई दार्शनिक विचार है ?

उत्तर :- हां, उस विचारका नाम है, आत्मदर्शन ।

प्रश्न :- थोडा चिंतनकेबारेमें कहिए ?

उत्तर :- क्या कहें, स्वपर विवेक होता है, होना चाहिए ।

प्रश्न :- कहीं भेद विज्ञान तो नहीं कह रहे हो ?

उत्तर :- हां, भेद विज्ञान पूजाकी रगरगमें है । रंगमें भी है ।

कुछ लोग पूछते है, मन पूजामें लगता नहीं तो क्या पूजा निष्फल होती है ? उत्तर है, उनकें लिए, कि पूजा निष्फल नहीं होती, पूजक निष्फल होता है, जब पूजक एकाग्र नही हो सकता । तो, जो कुछ होता है। वह पूजकमें होता है, पूजामें नहीं ।

अब मै परमात्म प्रकाश इस ग्रंथका एक दोहा यहां उद्धत करुंगा जो बहोत महत्वपूर्ण है ।

जहे निम्मलू णाणमउ सिद्धिहि णिवसई देउ ।

तहेउ णिवसइ बंभु वेहहं मं करि भेउ ।।

जैसे कार्य समयसारस्वरुप निर्मलज्ञानस्वरुप देव सिद्धलोकमें

रहते है, वैसा ही कारण समयसारस्वरुप परब्रम्ह शरीरमे निवास करता है ; अत: तू सिद्ध भगवान और स्वयंमे भेद मत कर ।टीकामें आग कहा है, यादृश: केवलज्ञानादि व्यक्तिरुप: कार्य समरसमय निर्गलो भावकर्मद्रव्य कर्म नोकर्म मलरहित:,

ज्ञानमय: केवलज्ञानानेन निर्वृत: केवलज्ञानान्तर्भूतानन्त गुणपरिणत: सिद्धो मुक्तो मुक्तौ निवसति तिष्ठति ब्रम्हा शुद्धबुद्धेकस्वभाव : परमात्मा पर उत्कृष्ट: । नच निवसति। देहे । केन, शुद्ध द्रव्यार्थिक नयेन । कथभूतेन। शक्तिरुपेण प्रभाकरभट्ट भेद या कार्षीस्त्वमिति । ..... ऐसा स्पष्टरुपमे कहा है ।

ओम -हीं सम्यक्त्वाय नम: । सम्यक्त्व = सम्यग्दर्शन परमात्मतत्त्व उपादेय है, उसमे रुचि सम्यक्द्दर्शन

है । सम्यक्द्दर्शनको जब चर्चा होती है तो तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्द्दर्शनम् यह सूत्र सामने आता है। तत्वका श्रद्धान तथा अर्थका श्रद्धान ऐसा भेद न करके तत्वार्थश्रद्धान ऐसा कहा गया है; क्यों ? तत्त्व सिद्धात् कहनेसे भाव मात्रके ग्रहणका

प्रसंग आएगा तथा अर्थश्रद्धान कहनेसे धन प्रयोजन अभिध्ेय आदि किसने भी उसमे समाए जाएंगे । ऐसा भी कह सकते है कि, केवल तत्त्व श्रद्धान कहनेसे ठिक अर्थ नही निकलेगा तथा केवळ अर्थश्रद्धान कहनेसेभी ठीक तत्त्व नही निकलेगा ।

प्रश्न :- सम्यक्त्व क्या है ?

उत्तर :- (इति मौन)

प्रश्न :- मौन क्यों हो ?

उत्तर :- क्या कहूं सम्यक्त्व अनिर्वचनीय है ।

प्रश्न :- फिर आचार्यों ने क्यों कहा है ?

उत्तर :- सम्यक्त्व यह निजी सर्वोत्तम धन है , जिसका बोधन होना परमावश्यक है, इसलिए भव्य जीवोंकेलिए संबोधन

करना पडा । और ....

प्रश्न :- और भी कुछ कहना चाहते हो ?

उत्तर :- सम्यक्त्व अनुभूतीकी चीज है । कहना होगा शुद्धात्माही उपादेय है । रहना होगा शुद्धात्मामे ही । इति धारा शॉवर वर्तमानसे यंत्र युग है , हम तो यूँ कहेंगे कि सम्यक्त्व रिफ्रिजरेटर या यंत्र धारागृह है । स्पष्ट है कि, प्राणी संसार आतापसे सदा तप्तायमान रहता है, उसके लिए सम्यक्त्व हिमालयके समान शीतल यंत्र धारागृह है ।

प्रश्न :- इतना अगर महत्व है तो उसके प्राप्तीके लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर :- भूतार्थरुपसे जाने गए जीवादि नौ पदार्थोका शुद्धत्मासे भिन्न करके सम्यक् अवलोकन करना चाहिए रुचि महत्वपूर्ण है । जीवके जीवकी रुचि होना एक उद्दिष्टेसे निर्जीवकी रुचि तो शुद्ध जीवास्तिकायकी होना चाहिए प्रश्न :- रुचि आनेके लिए चिंतन आवश्यक है, तो चिंतन क्या करें ?

उत्तर :- रागादि विकल्प रहित चित् चमत्कार भावनासे उत्पन्न मधुर रसके आस्वाद रुप सुखका धारक मै हूं, ऐसा चिंतन हो । थोडेसे सार यह है कि, नय पक्ष रहित जो समयसार है वही सम्यक्त्व है और एक मात्र उपादेय है ।

प्रश्न :- सम्यक्त्वका मै क्या कहूं ? रत्न, अमृत या कल्पवृक्ष

उत्तर :- केवल कहने माननेसे नहीं चलेगा। जो स्वानुभवगम्य है क्या कहे ? फिरभी कहना ही है तो हम कहेंगे कि सम्यक्त्व तो निस्पृहके लिए रत्न है, निर्मोहीके लिए अमृत है तथा वीतरागीके लिए कल्पवृक्ष है। यथार्थमे सम्यक्त्व जैसा है वैसा है, वैसाही (अनुपम) है, वैसा है ही है । इति अलम् ।

ओम -हीं अनंतज्ञानाय नमः ।।२ ।।

ओम -हीं अनंतदर्शनाय नमः ।। ३ ।।

प्रश्नः- धातिया कर्मनिकेचतुष्टयका नाश होते चतुष्टयकी उत्पत्ति हो है । अनंतपन कैसे संभव है ?

उत्तरः- सादि कहिये उपजने कालविणै आदि सहित है तथापि अपर्थनसिता कहिए अवसान या गन्त ताकरि रहित है तातै अनंत कहिये । अथवा अविभाग प्रतिच्छेतेदनिकी अपेक्षा इनको उत्कृष्ट अनंतानंत मात्र संख्या है तातै भी अनंत है ।

इस प्रकार अनंतपन है तो शब्दोंमे क्या कहे। फिर भी कहे बिन समझ नही हो सक्ती इसलिए कहनाही होगा । सूर्यका प्रकाश तथापि उत्कृष्ट माना जाता है, परतु वहभी अल्पमात्र क्षत्रको प्रकाशित करता है। ज्ञान प्रकाश समस्त जगत्को प्रकाशित करता है । जगत्को प्रकाशित करना कोई महत्व नहीं रखता; महत्त्व तो है आत्म सन्मुख होकर आत्माकी प्रसिद्धि करनेको। भगवान तो निजद्रव्यको जाननेके लिए ही अन्य छह द्रव्योंका कथन करते है । निजद्रव्यको जानना बैठे है । ज्ञानकी महिमा अगम्य है , श्री समंतभद्राचार्य कहते है - शोकक्षय - कृदव्याधे पुष्पदंत स्ववत्पते लोकत्रयमिदं बोधे गोपदं तव वर्तते । औरभी कहते है - यज्ञानान्नगीतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते । यह भी स्थूल है । वास्तविक , आत्माकी एक समयकी ज्ञान पर्यायमे अनंत सिद्ध और केवली भगवंत ज्ञेयरुपसे आजाये ऐसा एक एक पर्यायका अनंत सामार्थ्य है । अनंत ज्ञानको नमस्कार हो । स्वप्रतिभास है वह दर्शन है । आत्मा स्वयं ही अनंत धर्मोके समुदायरुप परिणत एक ज्ञानीमात्र भावरुप हौनेसे आत्मामे अनंत धर्य एक साथ है ; आगे पीछे नहीं । इसीसे दर्शन अनाकार उपयोगमय है । भेद लक्ष्यमे ले वह ज्ञान है, सामान्य रुपसे सत् है ऐसी सत्तामात्र देखना दर्शन है सामान्य सत्तारुपसे सब सत् है । गुण सत् है और पर्याय भी सत् है । यह सत् की सावधानी (स्व. परकी) स्वरुपकी सावधानीके साथ अनंत काल तक जागृत रहती है । मै त्रिकाली हू यह स्वींकार है । दर्शनकी प्रतीति यथार्थ करनेसे पूर्ण आत्माकी ही प्रतीति होती है अनाकार उपयोगरुप अनंत दर्शन कालकी अपेक्षासे अनादि अनंत है ; परिणमन एक एक समयका है । क्षेत्रेसे वह असंख्य

प्रदेशरुप आत्माकार है । प्रदेशत्वके निमित्तसे जैसा आत्माका आकार है वैसाही अनंतदर्शनका आकार है । सत् स्वभावी भगवान् आत्मा अनंत गुणोंका भंडार स्वयं सिद्ध है । वह द्रव्य निरपेक्ष (अनंतदर्शन) है ; उसका समय समर्थका परिमन भी दूसरोसे निरपेक्ष है । कुछ ज्ञातव्यदर्पणकी निजी स्वच्छ तावत् चेतनका निजी अंतर्चित्प्रकाश प्रतिभास दर्शन है । दर्शनरुप अंतर चित् प्रकाश तो सामान्य और निर्विकल्प है । आलोकनवृत्तिर्वादर्शनम् ; अस्यगमनिका, आलोकइति-आलोकनात्मा, वर्तनंवृत्तिः, आलोकनस्य वृत्तिरालोकन वृत्ति स्वसंवेदनम् । दर्शन और ज्ञान आत्मामे होते है । तीनों एक पदार्थ स्वरुप होनेसे एक रस है ज्ञानज्ञाता ज्ञेयकी अथवा दर्शन द्दष्टा दृश्यकी भेद विवक्षा होनेपर तीनोंही परप्रकाशक है; तथा उन्हीमे अभेद विवक्षा होणेपर जो ज्ञान है , वही ज्ञाता है , वही ज्ञेय है , इ. इ. अतः स्वप्रकाशक है ।

प्रश्न :- त्रिकाल गोचर अनंत बाल पदार्थोमे प्रवृत्ति करनेवाला ज्ञान है और स्वरुप मात्रमे प्रवृत्ति करनेवाला दर्शन है, दोनोंमे समानता कैसी ?

उत्तर :- आत्मा ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान त्रिकालके विषयभूत द्रव्योंकी अनंत पर्यायोंको जाननेवाला होनेसे सत् परिमाण है, इसलिए ज्ञान और दर्शनमे समानता है । अनंत दर्शनमयी सिद्धोंको बारबार नमस्कार हो

ओम -हीं अनंत वीर्याय नम :

आत्मामे आनंत सामर्थ्य है. लेकिन किसका ? पर द्रव्यके ये परमाणूपर भी आत्माका सामार्थ्य नही है । पर द्रव्यके आश्रयसे भी नही है । आत्माका सामार्थ्य है स्वभावका, स्वद्रव्यका । आचार्योने कहा है, निरंतर वीर्यमप्रतिन्त सामार्थ्यमनंतवीर्थम् । सामार्थ्य कभी हो, कभी नही हो ऐसा नही हो सकता । सामर्थ्य तो सदा सर्वदा बनाही रहता है । कभी कम हो कभी जादा हो ऐसा भी नही हो सकता । समार्थ्य तो सदाही परिपूर्ण होता है । अनंत वीर्यता तो इसीमे है । निजस्वरुपको रचनेका सामर्थ्य है उसमे अपूर्णतो कैसी है ?

प्रश्न :- क्या आत्मा निज स्वरुपकी रचना करता है ?

उत्तर :- स्वरुपका नबीन बनना नही है, बनाना भी नही है । आत्माकी सत्तानिज स्वरुपमे रहती है, स्थिर रहती है ; उसीका नाम स्वरुप की रचना है ।

आत्मा एक तत्त्व है, अखंड है, द्रव्यगुण पर्यायमय है । उस द्रव्य गुण पर्यायमयताको स्वरुपमे टिका रखे ऐसा सामर्थ्य । है और वह निरंतर है अप्रतिहत है । प्रत्येक गुणकी आत्माके अनादि अनंत कालकी अवस्थांओंमे प्रत्येक समयकी अवस्थाका वीर्य स्वतंत्र होता है ; उस अवस्थाका वीर्य ही अवस्थाकी रचना करता है । और रचना तो किसी परभावकी करना है ही नही । स्वभावकी ही तो रचना है । अलौकिक बात है । लौकिक उदाहरणसे कैसे समजाएं । आत्मा अलौकिक, वीर्य अलौकिक, गुण अलौकिक सब अलौकिक है, फिर लौकिकका क्या आधार लेना ?

कुछ लोग अनंततामे शंका लेते है । क्या लेते है ? तो कहते है आत्मासे अनंत गुण है, ठीक है ; किन्तु गुण गुण तो प्रत्येंक है, एक एक है, गिनतीकर सकते है ? अरे भव्यात्मन् आत्माके गुण अलग हो , गिनतीमे आ सके तो अनंतता रहेगी कैसे ? केवळ मात्र संख्या (Quantity) मे गिनना और गिनते बहुलता पानेपर अनंत कहना; ऐसी अनंतता नमी है । यहां तो अनंत गुणोंमेसे किसी एकको ले, तो उसमे भी अनंतता है। संख्यामे अनंतता गुणमे अपूर्व बात है । अलौकिक बात है ।

प्रश्न :- मान लिया स्वभावकी रचना करनेका सामार्थ्य है , तो रचना करते हुए, कुछ तो कष्ट होगा ?

उत्तर :- ऐंसा नही है । कृपानाथ परमगुरु कहते है, निज निरंजन परमध्याने पूर्व धैर्यमवलंबितं तस्यैन फल भूतमनंत पदार्थ दरिच्छित्ति विषये खेद रहितत्वमनन्तवीर्यम् । यहा खेद रहितत्वका विशेष महत्व है । आत्मा निजस्वरुप की रचना करे और रचना करते हुए वर्तमान समयमे कष्ट का अनुभव करे, तो अनंतता रही कहां ?

सारांश रुपसे कहे तो यूं कह सकते है कि , जब स्वभावका स्वीकार करे उसकी बल वीर्य स्वभावोन्मुख हुए बिना नहीं रहता और स्वभावोन्मुख होनेपर रचना सहज होती है पर्यायमे भी निर्मल पर्यायकी रचना होती है । यही अनंत वीर्य है । ऐसे अलौकिक अनंत वीर्यको धारण करनेवाले सिद्धोको मन वचन कायसे नमस्कार हो ।

ओम -हीं सूक्ष्मत्वाय नम : ।

अब हम सिद्ध भगवानके सूक्ष्मत्व गुणकी स्थूल चर्चा करेंगे स्थूल क्यों ? सूक्ष्म चर्चा करनेका सामार्थ्य है ही कहा ? अतीन्द्रियज्ञान विषयम् सूक्ष्मत्वम् । इन्द्रियजन्य ज्ञानका विषय न होना सूक्ष्मत्व है अतीन्द्रियका अर्थ है , इन्द्रिय व्यापारसे निरपेक्ष मन की भी अपेक्षा नहीं । क्यो ? क्यों कि सिद्ध परमात्मा तो निर्विकल्प समाधिस्थ है । उस समाधिमे जो अनुभव होता है उससे जो सुख होता है, उसका अनुभवन तो क्या , कथन भी, स्पष्टीकरण या प्रकटीकरण भी सहायतासे नही होता । ऐसा अतींद्रिय है । और अतींद्रिय होनेसे सूक्ष्मत्व लोकोत्तर है । इस सूक्ष्मत्वसे सिद्धजीव परमानंद परिणत होते है । ऐसे अतीद्रिय सूक्ष्मत्व गुण विभूषित सिद्धींको नमस्कार हो ।

ओम -हीं अवगाहनत्वाय नम : ।

ऐक दीपके प्रकाशमे जैसे अनेक दीपोंका प्रकाश समा जाता है, उसी तरह एकसिद्धके क्षेत्रमे संकर तथा व्यतिकर दोषसे रहित जो अनंत सिद्धोंको अवकाश देनेका सामार्थ्य है वह अवगाहन गुण है । सिद्ध जीव तो ऐसे अनंत गुणोंका भंडार है । देखो, कैसे कैसे अलौकिक गुण है । क्या मर्त्य लोकका मानव इनको छू सकता है ? नही । किंन्तु

चिन्तनका आथाग इतना विशाल है कि गुणोंको आगमसे जानकर अनुभूतिमय पहुंच सकते है । यहां प्रश्न .

प्रश्न :- जीव अनंतानंत है, उससे भी अनंतगुणे पुद्गल द्रव्य है, लोकाकाश प्रदेश प्रमाण काल द्रव्य है, तथा ए धर्म द्रव्य न एक अधमे द्रव्य है । असंख्यात प्रदेशी लोकमे ये सब कैसे अवकाश पाते है ?

उत्तर :- ऐक घरमे जिस प्रकार अनेक दीपकोंका प्रकाश समा रहा है ; जिस प्रकार ऐक छोटेसे गुटकेमे बहुतसी सुवर्णकी राशि रहती है, उष्ट्रिके एक घट दूधमे एक शहदका घडा समा जाता है, उसी प्रकार असंख्यात प्रदेशी लोकमे विशिष्ट अवगाहन शक्तिके कारण जीवादि अनंत पदार्थ सहज अवकाश पा लेते है । सिद्धोंका अवगाहनत्व गुण जयवंत हो ।

ओम -हीं अगुरुलघुत्वात्मक जिनाय नम : ।

आत्माकी शोभा आत्माके ही कारण है । आत्मामें षट्स्थान पतित वद्धि हानि तो है ही, ऐसा होनेपर भी वह अपने स्वरुपमे ज्यों का त्यों स्थित रहता है; एसा उसका अगुरुलघुत्व गुण है । यह गुण आत्माके स्वरुप प्रतिष्ठित पानेकी कारण है । कैसी अपूर्व बात है । ऐसो अपूर्व बातोंको सुनकर सम्यक्तीजीव स्वानुभूति करनेके लिए प्रयत्नशील होता है । अजी, अपने स्वरुपको छोडकर कदापि पररुप नही होना प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है। गुण पर्यायमभी वह व्याप्त है ।

आत्माकी बात करो तो पुण्यसे भी आत्माकी शोभा नही बनती । स्वरुप प्रतिष्ठित आत्मा स्वयंशोभायमान है । आत्मा परमात्मा होना इससे बढकर क्या शोभा हो सकती है ? परमात्मा दशा प्राप्त होनेपर वह अनंत कालतक बनी रहती है । यहा शिष्य प्रश्न करता है की गुरु और लघु दोनोंभी क्यों नही ? क्या एकसे काम नही चलेगा ? उसके लिए ज्ञानसिंधु गुरु समझाते है । देखो- यदि सर्वथा गुरुत्वं भवतिपदा लोहपिण्डवदध: पतनम्, यदिच सर्वथा लघुत्वं भवति तदा वाताहतार्क तूलवत् सर्व दैव भ्रमणमेव स्यात्, न च तथा; तस्मादगुरुलघुत्वगुणोऽ भिधीयते। देखो आत्मामे ज्ञान गुण है , वह भी त्रिकाल है , उसकी एक समयकी पूर्ण निर्मल केवलज्ञान अवस्थामे तीन काल तीन लोकके समस्त द्रव्य गुणपर्याय ज्ञात होते है, ऐसा अनंत सामार्थ्य है । विकल्प रहित एसे पूर्णशुद्ध स्वभावरुप केवनज्ञानकी महिमा अगाध है ; तो जिस द्रव्यके आधारसे केवलज्ञान प्रगट हुआ तो उस शुद्ध आत्माकी महिमा कहांतक लिखे । केवल ज्ञानकी एक पर्यायकी अपेक्षा दूसरी पर्यायमे जानतका सामार्थ्य न्यूनाधिक नही होता; सामर्थ्य ज्यों का त्यों बना रहता है; फिर भी अगुरुलघुगुणका सूक्ष्म परिणमन तो प्रति समय होता ही है ऐसे अचिंत्य गुणधारी सिद्धोंका नमस्कार हो ।

ओम -हीं अव्याबाधात्वाय नम : ।

आत्माके सुखमे बाधा नही होती, इसलिए वे भव्याबाध होते है । बाधा क्या है ? कामादि जनित बाधा । अधिक कहने से क्या ? आचार्य करते है, वेदनीय कर्मोदय जनित समस्त बाधारहितत्त्वादव्याबाधा गुणश्चेति स्पष्ट है , वेदनिय कर्मका जब उदय होता है तो सुखमे बाधा होती है । सिद्धोंके तो समस्त कर्मक्षय हो गये है तो उदय कहा रहा ? कहनेको तो बहोत कुछ है, फिरभी थोडासा कहते है, ध्यानसे सुनो सहज शुद्ध स्वरुपानुभवसमुत्पन्नरागादिविभावरहितसुखामृतस्थ यदेकदेशसंवेदनं कृतं पूर्व तस्थैव फलभूतम व्याबाधामनंतसुखं भव्यते । सुख तो अमृत तभी है , जब वह शुद्ध आत्माके आधारसे उत्पन्न हो । हम छद्मस्थ जीवका सुख तो वेदना प्रप्ती कारत्वात्कच्छूवण्डूयनवत् है, याने दादको खुजलानेके समान केवल वेदनाका प्रतिकार मात्र है । सिद्धोंका सुख संसारके विषयोंसे अतीत, स्वाधीन तथा अव्यम होता है । किसीभी प्रकारसे बाधा नहीं होती ।

ऐसे शाश्वत सुखोंके स्वामी सिद्धोंको नमस्कार हो ।

ओम